# बिहार विकास के संदर्भ में सुदृढ़ नीतियों का स्वरूप

शोधार्थी छात्रा रशिम रूपम स्नातकोत्तर इतिहास विभाग,

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय कामेश्वरनगर दरभंगा, 846004, (Bihar)

सतत् विकास की रणनीति को भली– भाँति समझने के लिए जरूरी यह है कि हम सबसे पहले यह जानना है कि 'विकास' क्या है ? इसको समझ लें। क्योंकि इसके उपरांत ही हम सतत् विकास के मार्ग में आने वाली समस्याओं को रेखांकित कर सकते हैं। इस संदर्भ में एंजिल्स ने यह सही कहा है, ''समस्त प्रकृति, छोटे से लेकर बड़े तक, बालू–कण से लेकर सूर्य तक और वायू कण से लेकर व्यक्ति तक आने और चले जाने कि एक निरंतर स्थिति में, निरंतर प्रवाह में, अनवरत गति तथा परिवर्तन की स्थिति में है।''[1]

किसी भी राष्ट्र कि विकास के लिए सुदृढ़ नीतियाँ एवं योजना आवश्यक होती है, किन्तु उससे भी अधिक आवश्यक होता है उनका समुचित क्रियान्वयन और इसका दायित्व प्रशासनिक व्यवस्था पर होता है। वर्तमान समय में विकासशील राष्ट्रों को इस महत्वपूर्ण कष्ट की प्रतीति हो रही है कि सुनियोजित योजनाएँ यद्यपि आवश्यक है, परंतु वे अपने आप में पर्याप्त नहीं है। कागज पर योजनाएँ कितनी ही अच्छी क्यों न हों परंतु जब तक उन्हें यथोचित रूप से कार्यान्वित नहीं किया जाता तब तक वे अर्थहीन हैं। योजना का अच्छा प्रारूप उसकी सफलता की गारंटी नहीं है। अतएव उसकी सफलता का कार्यान्वयन ही उसका निर्णायक पक्ष माना जाता है।[2]

वस्तुतः प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के बीच होने वाली क्रिया–प्रक्रिया की गुणवत्ता ही किसी राष्ट्र को विकास की दिशा और उसकी गति को निर्धारित करती है। इन अनेक रूपों एवं शक्तियों की क्रिया–प्रक्रिया ग्रामीण क्षेत्रों में और भी अधिक स्पष्ट रूप में सामने आती है, क्योंकि इन ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्य से कहीं अधिक विस्तृत और बृहद् काल आयाम, जो सैकड़ों से हजारों बर्षों तक हो सकता है, को कुछ ही दशकों में समेटने का प्रयास किया जाता है। चूँकि इन ग्रामीण समाजों की सबसे बड़ी न्यूनता यह होती है कि यहाँ पर नवीन राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था के संबंध में बहुत कम जानकारी होती है, वहीं नवीन प्रशासनिक व्यवस्था के लिए इन ग्रामीण समाजों को कार्य करने की व्यवस्था एक प्रकार से अजनबी होती है और इनमें मिलन बिन्दु ढूंढ़ना बहुत कठिनाईयों से भरा होता है। यही कारण है कि सुदूर क्षेत्रों में विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए विकेन्द्रीकरण

की प्रक्रिया अपनाई जाती है, ताकि विकास समाज की आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं के अनुरूप किया जा सके।[3]

यही कारण है कि समाज में निरंतर परिवर्तन और अपरिवर्तनशील समाज का अस्तित्व संभव ही नहीं है। विकास कार्यों से ही समाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण क्रम प्रारंभ होता है।

विकास एक ऐसी बहुआयामी अवधारणा है जिसकी निश्चित और सर्वमान्य परिभाषा करना कठिन है। इस संदर्भ में जोसेफ ला प्लोम्बारा ने विकास को राजनीतिक तंत्र की शक्ति के संचालन या प्रबंध को समयानुसार मांग के अनुकूल परिवर्तन के स्वरूप में समझा है। यह आर्थिक एवं सामाजिक कारकों को एक विशिष्ट आशय से महत्व देता है। उसके राजनीति विषय के संदर्भ को प्रचुर मात्रा में साफ–साफ प्राथमिकता देते हुए यह माना है कि आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक कारणों से राजनीतिक परिवर्तन हो सकते हैं, किन्तु उसने यह नहीं माना है कि ये कारक एक–दूसरे के ऊपर निर्भर है।[4] यह गौरतलब है कि विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत सामाजिक विकास की स्थिति को स्पष्ट करने का राइनहार्ड बैन्डिक्स ने सफल प्रयास किया है। उसने आधुनिक युग में ऐतिहासिक परिवर्तन की दिशा में विकास शब्द के प्रयोग करने की आवश्यकता तब समझी है जब तकनीकी एवं आर्थिक–सामाजिक–राजनीतिक दोनों परिवर्तनों की बात एक स्थान हो रही हो।[5]

इस तरह से किसी राज्य की आर्थिक प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि वहाँ कृषि, उद्योग एवं अन्य विभिन्न प्रकार की सेवाओं का कितना विकास हुआ है। विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति की सतत् विकास का मापदंड होता है। एक विकसित राज्य में समाज आर्थिक प्रगति की राह पर आगे बढ़ता है। आज सामाजिक न्याय के साथ सतत् विकास बिहार की आर्थिक चिंतन की मूल भावना है। बिना सतत् विकास के बिहार की प्रगति मात्र काल्पनिक है। सतत् विकास मूलतः ग्रामीण कृषि, उद्योग, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास, पेयजल, स्वच्छता आदि आधारभूत सुविधाओं की सही और संतुलित प्रगति पर ही निर्भर करता है। लेकिन यहाँ क्या होता है निर्णय लेते समय जनहित कि जड़ता की अतल एवं अंधेरी की गहराई को प्राथमिकता सबसे नीचले पायदान पर होता है, बाढ़ जब दस्तक देने लगती है, तो बचाव के कार्य तेज किये जाते हैं बाढ़ का पानी जब आबादी को लीलने लगता है, तो राहत की व्यवस्था होती है। कड़ाके की ठंड पड़ने लगती है तो निराश्रितों कंबल देने की तैयारी आरंभ होती है। भूखमरी की खबर आती है तो अनाज पहुँचाने की सुध जगती है, बीमारी जब महामारी

का शक्ल धारण कर लेती है, तो दवा की व्यवस्था के विषय में सोंचा जाता है पुल टूटने और दुर्घटना में लोगों की मौत के बाद सड़के बनाने की तैयारी की जाती है।[6] इस तरह से देखेंगे तो गाँवों में खेती भी बर्वादी के कगार पर पहुँचा जा रहा है। खाद, बीज, डीजल, रासायनिक दवा आदि के मूल्य बढ़ गये, किसानों को मूलधन भी प्राप्त नहीं हो रहा है। प्राकृतिक खाद का प्रयोग तो नाम मात्र का हो रहा है। हाँ यह सही है कि जनसंख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ने के कारण प्रत्येक वर्ष जमीन टुकड़ों एवं प्रति टुकड़ों में बंटती जा रही है। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्पादन में कमी आई है, लेकिन इसका दुखद पहलू तो यह है कि पूर्ववर्ती सरकार के सम्पूर्ण शासनकाल के दौरान ग्रामीण युवक रोजगार के लिए पलायन कर रहे हैं, क्योंकि खेती घाटे का सौदा साबित हो रही है। अधिकांश चीनी मिलें बन्द होने के कारण किसान गन्ने जैसी नकदी फसल नहीं उगा पा रहे हैं।[7]

**नीतिगत पहलकदमियों का क्रम :**

बिहार में सतत् विकास के ताने–बाने को समझने के लिए हमें स्वतंत्र भारत के इतिहास के पन्नों को खरोंचना होगा। शुरूआती दौर में डॉ0 स्पेन्सर हैज द्वारा केवल केरल में वाई0 एस0 सी0 ए0 के तत्वाधान में भारत डैम प्रयोग, ई0 ल0 ड्रेन द्वारा किया गया। गुजरात आन्दोलन एवं अन्य प्रयोग एवं 1932 की बी0 टी0 कृष्णामचारी का बड़ौदा ग्रामीण उत्थान प्रयोग आदि शामिल हैं। इन सभी प्रयोगों ने स्वतंत्र बिहार के लिए सतत् विकास की एक ऐसी नींव डाली जिस पर सतत् विकास को सपनों का महल खड़ा किया जा सकता है। उस नींव की अगली ईंट के रूप में मद्रास की फिरकी योजना, एस0 के0 डे0 द्वारा किया गया, निलोखेड़ी प्रयास आदि को माना जा सकता है। सामाजिक, आर्थिक न्याय के लिये जो हमारे संविधान में धारा–36 – 5 तक के प्रावधान है, उन्हें ही जोड़ा जा सकता है। इस संदर्भ में पहली पंचवर्षीय योजना में सतत् विकास हेतु ''सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा'' को स्वीकार किया गया जो सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन लाने में मदद कर सके। इसके लिए विस्तार अवधारणा के आधार पर प्रखंडों का निर्माण किया गया जो प्रखंड विकास पदाधिकारी की अगुवाई में प्रशासनीक नेतृत्व प्रदान कर सके। 5.2 सुदायिक विकास योजनाओं को देश के विभिन्न भागों में प्रयोग के रूप में लागू किया। 02 अक्टूबर 1952 को गाँधी जयन्ती के दिन तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपने उद्घाटन भाषण में भाव–विह्वल होकर कहा था ''जो कार्य आज हम शुरू करने जा रहे हैं वह मातृभूमि की सेवा में है। यह उस धरती की सेवा में है, जिसके हम सभी अंग हैं। हमें अपनी मेहनत के पसीने से इसे सींचना है। यदि

आवश्यकता पडी तो हम अपना खून भी बहा सकते हैं, ताकि लाखों–लाख गरीब ग्रामवासियों के जीवन स्तर में सुधार आ सके और चहुँमुखी विकास हो सके।''[8]

भारत गाँवों का देश है। देश की आत्मा गाँव में बसती है। हमारी कुल जनसंख्या का 80 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है। इस आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे बसर कर रहा है। इनलोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठाने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार 1 अप्रैल, 1999 में ''स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना'' प्रारंभ की है, जिसके द्वारा स्वयं सहायता समूहों के जरिये स्वरोजगार को बढ़ावा दिया जाता है।

**स्वयं सहायता समूह :**

वर्तमान परिवेश में समूहों का बहुत ही महत्व है। जो कार्य अकेले में नहीं किया जा सकता है वह समूह में कर लिया जाता है, क्योंकि एकता में ही बल है। स्वयं सहायता समूह समान आर्थिक, सामाजिक पृष्ठभूमि के ग्रामीण स्त्री–पुरुषों का गैर राजनीतिक समूह है जो आपसी विश्वास एवं सहयोग के आधार पर काम करता है। समूहों द्वारा ही निर्धन वर्ग की सोंच में परिवर्तन लाया जा सकता है और सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से सुदृढ़ किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि बिहार में सतत् विकास के लिए चलायी गयी विभिन्न योजनाओं या कार्यक्रमों को भले ही अपेक्षित सफलता न मिली हो, लेकिन इन प्रयासों के परिणामस्वरूप मूल सुविधाओं के विकास में पर्याप्त तेजी आयी है। विगत दशकों में बिहार सरकार की इच्छा शक्ति की कमी के कारण ही विकास की गति तीव्र नहीं हो रही थी। जो भी विकास हुआ था उसका श्रेय केन्द्र सरकार को और विभिन्न बैंकों को था। राजनीतिज्ञों में इच्छा शक्ति की कमी, नौकरशाहों में व्याप्त भ्रष्टाचार, लूटपाट आदि के कारण बिहार में न केवल आर्थिक क्षेत्र में वरन सामाजिक क्षेत्र में भी गतिहीनता/जड़ता की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। परंतु अब बदलाव की किरणें दिखने लगे हैं। सामाजिक मोर्चे पर विशेष कर स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्रों में, हाल के वर्षों में अच्छी प्रगति हुई है। राज्य के मानव संसाधनों के दोहन के लिए यह आवश्यक शुरूआत है। आर्थिक मोर्चे पर किये जा रहे तमाम उपायों से राज्य के सतत् विकास के लिए अवसरों में नये द्वार खुलेंगे। लेकिन साथ ही सेवा तंत्र की कुशलता बढ़ाने और सेवाओं की गुणवत्ता सुधारने की सख्त जरूरत है।[9]

**निष्कर्षतः–** हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि पिछले कुछ वर्षों में सरकार द्वारा किये गये प्रयास के फलस्वरूप स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्रों में अच्छी प्रगति हुई है। राज्य के मानव

संसाधनों की पूर्ण संभावनाओं की दोहन के लिए यह आवश्यक शुरूआत है, किन्तु बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषिगत अधो–संरचनात्मक सुविधाओं यथा – उत्पादन अधो–संरचनात्मक सुविधाएँ (सिंचाई, उन्नतशील बीज, उर्वरक) का घोर अभाव है। बाजारजनित समस्याओं के अलावा भंडारण, परिवहन आदि की समस्याएँ है कृषि उत्पाद को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के अनुकूल नहीं बनाया जा सका है और न ही ऐसी अधो–संरचनात्मक सुविधाएँ मौजूद है। इन अधो– संरचनात्मक सुविधाओं के अलावा बिहार के गाँवों में सड़क, आवास, विद्युतीकरण, पेयजल आदि का अभाव है। सतत् विकास तंत्र को आसान बनाने वाली प्रभावी कार्यसूची का स्वरूप निर्धारण करने और उसे अस्तित्व में लाने की एक बहुत बड़ी चुनौती बिहार के सामने मौजूद है।

**स्रोत संदर्भ सूची :–**


1. एंजिल्स फ्रेजाकि, **द ऑरिजिन ऑफ द फेमिली, प्राइवेट प्रॉपर्टी एण्ड द स्टेट,** फॉरेन लैंग्वेज पब्लिशिंग हाउस, मास्को, 1943, पृ0 13–14
2. कुमार रमेश अरोड़ा, (सम्पादिक), **इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, परसेप्शन एण्ड पर्सपेक्टिव,** आलेख प्रकाशन, जयपुर, 1999, पृ0 101–103
3. शाही राजकिशोर, **पंचायती राज से ही विकास संभव,** हेमंत (सम्पादित), बिहार विमर्श, प्रकशन संस्थान, नई दिल्ली, 2003, पृ0 173–175
4. एच0 पी0 अवस्थी, विकास प्रशासन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2000, पृ0 2–4
5. उपर्युक्त
6. सुकान्त, जडता की अतल गहराई में बिहार, हिन्दुस्तान, दिनांक–22 दिसम्बर, 2003, पृ0 1 एवं 15
7. वाई0 डी0 प्रसाद, **रूरल डेवलपमेंट इन बिहार,** हर आनन्द, नई दिल्ली, 2000, पृ0 63–68
8. जे0 सी0 जौहरी, **इंडियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स,** विशाल पब्लिकेशन, जालंधर, 2001, पृ0 514–16
9. डॉ0 ऋचा सिंह, **बिहार में कानून–व्यवस्था के बदलते आयाम,** जानकी प्रकाशन, पटना, 2014, पृ0 47–59